

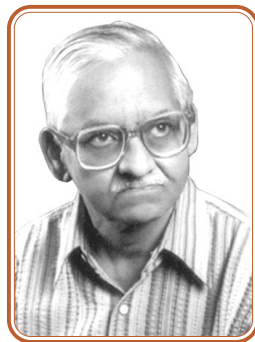
ध्यान पत्रिका

प्रेरक : डॉ० शम्भू नाथ

M.Sc., Ph.D.

वर्ष-21 मार्च-2011 अंक-3

ज्ञात हुआ अज्ञात, आशिष जिनका प्राप्त कर।
नमन करूं दिन रात, जिन दिखलायो मुक्ति-पथ॥



(1936-2009)

श्रद्धेय डा० शम्भू नाथ जी का स्वर्गवास 19 मार्च, 2009 को हुआ।
उनकी प्रेम पूर्ण शिक्षा और हार्दिक आशीर्वाद के कारण निर्गुण निराकार,
सर्व हितकारी ब्रह्म की झलक और मुक्ति पथ पर चलने की प्रेरणा मिली।
उस ब्रह्मनिष्ठ व्यक्तित्व की पुण्य तिथि पर शत्-शत् नमन।

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09813294171

गुरु और ब्रह्मज्ञान

डॉ० शम्भू नाथ

गुरु का सन्धि विच्छेद है: गु + रु। गु का अर्थ है: अन्धेरा। रु का अर्थ है: हटाने वाला। अर्थात् जीवन के अंधेरे रूपी अज्ञानता को हटाने वाला।
सत्: हर व्यक्ति के अन्दर गुरु के रूप में सत् है। ज्यों-ज्यों पृथ्वी पर समय बीता और सतयुग पीछे जाने लगा: सत् की कमी में माया बढ़ने लगी। ज्यों-ज्यों सतयुग पीछे गया: अज्ञानता बढ़ी और कलियुग (माया जाल अथवा गलतफहमी) में समाज ने सुख के साधन को सुख मान लिया। जब कि आत्म-ज्ञान ही जीवन के सुख का साधन है।

गुरु के लक्षण : पराजगत का सम्पूर्ण ज्ञान मात्र परमात्मा अर्थात् ब्रह्म को है: जिनके तीन सहायक प्रकृति में ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। अतः आध्यात्मिक ज्ञान यह है कि:-

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।

गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे: नमः॥

उपरोक्त पक्तियां हमें बताती हैं कि गुरु: तो केवल साक्षात् ब्रह्म है।

ब्रह्म: भाव से परे क्षेत्र को ब्रह्म कहते हैं।

प्रश्न उठता है कि 'मनभाव से परे क्षेत्र' को गुरु कैसे बनाएं ?

जब तक प्राण हैं: तब तक किसी न किसी मात्रा में गुरु तत्व मिलता ही रहता है, ऐसा प्रकृति का नियम है। नित्य दो-तीन बार ध्यान के अभ्यास पर बैठकर: मन के अन्दर के क्षेत्र में विचरण के कर्म के माध्यम से और होनी की शक्ति की सहायता से: मन को भाव से परे होने दें। इस तरह से बार-बार गुरु के सम्पर्क में आकर: जो अपने मन को ज्ञानी बनाने में व्यस्त होगा, उसी का गुरु तत्व बढ़ेगा और उसी को जीवन का सम्पूर्ण ज्ञान मिलेगा।

संक्षिप्त आध्यात्मिक जीवन

मैंने 24 मई, 1977 को महर्षि महेश योगी के योगकेन्द्र में ध्यान की दीक्षा ली। उनके द्वारा लिखी पुस्तकें— (1) Science of Being, (2) Commentary on Gita & (3) Meditation का अध्ययन भी किया। मुझे एहसास हुआ कि जीवन का आधार: मात्र चेतना का विकास है। **सारा ज्ञान: चेतना के विकास में निहित है। चेतना का विकास बढ़ने के साथ-साथ: जीवन के सारे सुख उपलब्ध होने लगेंगे।** अतः धीरे-धीरे 1977 से पहले की जिन्दगी में रुचि कम होने लगी और अपनी चेतना के विकास के रास्ते पर तेजी से अग्रसर हुआ।

1977 से पूर्व मैं पिता द्वारा 1920 में स्थापित कश्मारी होटल के संचालन में व्यस्त था। 1980 में एक मित्र मेरे पार्टनर के रूप में आए, जिससे मुझे ध्यान का समय और अधिक मिलने लगा। चेतना का विकास: ज्यों-ज्यों होता गया, परिस्थितियां विकास के अनुकूल होती गईं। अतः 4 फरवरी 1984 को पुराने व्यवसाय से पूर्ण रूप से छुट्टी मिल गई और पूरा समय ध्यान के अभ्यास और स्वाभाविक दिनचर्या में व्यतीत होने लगा। लगभग 16-17 महीने जीवन ऐसा ही चलता रहा। इसी बीच मुझे उचित वातावरण मिला। परम पूज्य श्री हृदय नारायण चाचा जी के माध्यम से मानस साधना मण्डल के कुछ साधक मुझसे ध्यान सीखने लगे।

1990 से मेरे समपादन में ‘ध्यान पत्रिका’ मासिक आरम्भ हुई। इसके माध्यम से (अपनी चेतना के विकास के आधार पर), जीवन के अलग-अलग पहलुओं का विवेचन हुआ। ये प्रकाशित आध्यात्मिक लेख, उन साधकों के लिए बहुत लाभदायक होंगे: जो जीवन को समझने हेतु चेतना के विकास का रास्ता अपनाते हैं। अतः इस उद्देश्य से, कि बीतते हुए समय के साथ, ये आध्यात्मिक लेख लोप न हो जायें: इन लेखों

को कुछ छोटी-छोटी पुस्तिकाओं में प्रकाशित करने की बात मेरे मन में उठी। इस को ईश्वर की प्रेरणा समझकर: ये पुस्तकें प्रकाशित की गईं।

ये लेख मेरे द्वारा अलग-अलग सत्संगों की मेरे शब्दों में प्रस्तुति मात्र हैं। इन्हें मैंने बहुत से ऑडियो कैसेट (Audio Cassettes) के माध्यम से भी साधकों के बीच प्रस्तुत किया है। इनमें ज्यादातर लेख का डिक्टेसन (Dictation) श्री कुबेर प्रसाद गुप्त जी को दिया और उनके परिश्रम से पत्रिकाएं छपीं।

समाज अति व्यस्त जीवन की ओर अग्रसर है। अतः लोग मोटी किताबों की ओर आकर्षित भी नहीं हो पाते। इसी उद्देश्य से मेरे द्वारा मासिक पत्रिकाओं में छपे सभी आध्यात्मिक लेखों (जिन का मूल उद्देश्य केवल जीवन के अलग-अलग पहलुओं का रूप दर्शाना है), को हमेशा बनाए रखने के लिये: पुस्तक “**जीवन क्या है ?**” को चार भागों में छपवाया :-

भाग-1 : जून 1994 में प्रकाशित हुआ। इस में प्रथम ग्यारह महीने (जनवरी 1990 से नवम्बर 1990 तक), में छपे हुए ‘मासिक पत्रिकाओं’ के लेख पुनः मुद्रित किये गए।

भाग-2 : अगस्त 1996 में प्रकाशित हुआ। इसमें दिसम्बर 1990 से दिसम्बर 1993 की ‘ध्यान पत्रिका’ के अंकों में छपे हुए लेखों को पुनर्मुद्रित किया।

भाग-3 : जनवरी 1994 से दिसम्बर 1996 के ध्यान पत्रिका के अंकों में छपे लेखों को पुनर्मुद्रित किया।

भाग-4 : जनवरी 1997 से दिसम्बर 1998 तक ध्यान पत्रिका में छपे हुए लेखों को पुनर्मुद्रित किया।

Available from Dr. Baldev Raj Nasha, 176/2, Rishi Nagar, Nasha Kalyan Hospital, Hisar-125001

जीवन को सत्य का आभास

आज के मनुष्य को शारीरिक शक्ति और बौद्धिक शक्ति का आभास तो होता है: लेकिन आत्मशक्ति का नहीं होता। या यह कहें कि अपने जीवन की सारी घटनाओं को केवल शारीरिक और बौद्धिक शक्तियों के सन्दर्भ में समझता और महसूस करता है, लेकिन उसकी चेतना जीवन की आये दिन की घटनाओं को आत्मशक्ति की दृष्टि से देखने और समझने में सक्षम नहीं है। **जीवन को सत्य का आभास कराने में केवल आत्मसत्ता सक्षम है।** मैंने आत्मसत्ता की दृष्टि से सारे शब्दों को समझाने का प्रयास किया है :-

तपस्या का अर्थ साधारणतया लोग दुःख को अपनाने से: समझते हैं। लेकिन ये अर्थ: मात्र शारीरिक और बौद्धिक शक्तियों की दृष्टि से ठीक होगा। मैंने इस पुस्तक में तपस्या का अर्थ बताया है कि: **मन आत्म-सुख में ऐसे ही तपे : जैसे सोना आग में तपता है।**

सेवा का अर्थ बताते समय मैंने समझाया: कि शारीरिक शक्ति द्वारा और बौद्धिक शक्ति द्वारा, या बाहर के धन के माध्यम से हम केवल मृत्यु लोक के प्राणियों की सेवा कर सकते हैं : **लेकिन मात्र आत्मशक्ति के माध्यम से ही ईश्वर की सेवा सम्भव है।**

आज के युग का एक साधारण मानव इन बातों को केवल अपनी निम्न स्तर की चेतना के कारण: न ही सोच पाता है और न समझ पाता है। इसीलिए मैंने **चेतना के विकास** का अर्थ व रास्ता बताया और उनकी अलग-अलग अवस्थाओं का वर्णन किया है।

स्वास्थ्य शब्द सुनते ही मन शारीरिक कष्टों की ओर चला जाता है। लेकिन इस पुस्तिका में **आत्मशक्ति की दृष्टि से इसका अर्थ समझाया।**

जीवात्मा, परमात्मा और आत्मा: मात्र देवी क्षेत्र की शक्तियां हैं। इसी कारण बाहरी चेतना की मदद से इनका अर्थ साधारण मनुष्य समझने में असमर्थ है।

धारण करने योग्य कर्म ही धर्म है। ऐसा पूरे समाज में प्रचलित है। लेकिन ज्यादातर व्यक्तियों का मन: मात्र शारीरिक और बौद्धिक कर्मों की सीमाओं में रह जाता है। इसीलिए इस पुस्तक में समझाया गया है: **कि आत्मसत्ता बढ़ाने सम्बन्धित कर्म को ही गीता में सर्वोच्च धर्म कहा है, क्योंकि इस धर्म के पालन द्वारा मन में अजेय सत्ता पिरोने लगती है और मनुष्य अपने मन को जीतने की ओर अग्रसर होने लगता है।** धीरे-धीरे **“मन जीते जग जीते”** की कहावत की सत्यता को महसूस करने लगता है। मात्र इस धर्म के पालन न होने के कारण: हमारा **अहम् (Ego)** दुखदायी होने लगता है। **मन में ब्रह्म तत्व पिरोने से: हमारा यही अहम् सुखदायी होने लगता है।**

ये लेख किसी भी पुस्तक या पत्रिका से नहीं लिए गए हैं। ज्यों-ज्यों मेरी चेतना का विकास हुआ, इस विकसित चेतना में उपजे ज्ञान को इन लेखों द्वारा साधकों तक पहुंचाया है। एक समय अवश्य आएगा: जब मेरी पुरानी ‘मासिक पत्रिकाएं’ समाज को प्राप्त होना कठिन हो जाएंगी। तब यह ज्ञान मात्र इन चार पुस्तकों **‘जीवन क्या है?’** द्वारा मिलना सम्भव होगा। इसी उद्देश्य से ये पुस्तिकाएं प्रकाशित की जा रही हैं।

प्रयासहीनता द्वारा ब्रह्म प्राप्ति

ज्यों-ज्यों समय बीतने के साथ: साधक कम से कम समय में **‘मात्र प्रयासहीन होकर’** अर्थात् ध्यान (Meditation) द्वारा गहरे से गहरा आराम लेने में सिद्ध हो जाएगा: त्यों-त्यों उसी अनुपात में परा जगत से इन्द्रिय-जगत में ज्यादा ब्रह्म तत्व; इन्द्रिय जगत की प्राकृतिक रचनाओं के रख-रखाव के लिये प्रवाहित करने में सिद्ध हो जाएगा। जिस अनुपात में

ऐसा होगा: उसी अनुपात में उसकी ज्यादा से ज्यादा इच्छाएं बिना प्रयास के पूरी होने लगेंगी।

आत्मसत्ता परा जगत का धन है और हमारी प्रार्थनाएं इस धन को कुछ विशेष इच्छाओं की पूर्ति के लिये खर्च करने की कलाएं हैं। इस तरह से साधकों को यह समझाया गया है: कि परा जगत के धन का संचय और उस धन के व्यय की कला (अर्थात् दोनों कलाओं) में सिद्ध होना है।

हर मनुष्य के अन्दर **थकावट** की अनन्त पर्तें होती हैं। सबसे स्थूल पर्तों में: उभरी हुई थकावट होती है और दूसरी सूक्ष्म पर्तों की थकावट तुलनात्मक दृष्टि से: जमी हुई होती है। निद्रा: मात्र सबसे स्थूल पर्त की उभरी हुई (शारीरिक) थकावटों को निकालने के लिये होती है। सूक्ष्म पर्तों की जमी हुई (मानसिक) थकावट को आन्तरिक जगत से निष्कासन के लिये: जागती हुई अवस्था में सोने का अभ्यास (दूसरे शब्दों में जागती हुई अवस्था में प्रयासहीनता अथवा ध्यान का अभ्यास) आवश्यक है। **जमी हुई थकावटें आन्तरिक जगत के बादल हैं। ये आन्तरिक जगत या परा जगत या दिव्य जगत की शक्तियों को ढक लेते हैं। दिव्य शक्तियां पराजगत का प्रकाश हैं।**

समाज में नित्य मनुष्य **चेत और अचेत** अवस्थाओं में आता जाता है। उसे इस बात का ज्ञान है: कि अचेत अवस्था में सृष्टि की कोई भी शक्ति किसी के काम नहीं आती। मात्र चेत अवस्था में अलग-अलग व्यक्ति: अलग-अलग विषयों के क्षेत्र में अपनी चेतना के आधार पर, उस क्षेत्र की शक्ति का प्रयोग करता है। यह इस बात को प्रमाणित करता है कि जिस व्यक्ति की जिस क्षेत्र में जैसी चेतना की जागृति होती है : उस क्षेत्र की केवल उतनी ही शक्ति, वह प्रयोग में ला सकता है। यही कारण है कि अलग-अलग क्षेत्रों में, भले ही वे क्षेत्र मात्र इन्द्रिय जगत

के हों या दिव्य जगत के: शक्तियां अपार हैं। लेकिन इन शक्तियों के प्रयोग की क्षमता अलग-अलग व्यक्तियों की चेतना की जागृति पर ही निर्भर करेगी। जो मनुष्य पाँच इन्द्रियों की चेतना में ही जीवन का सब कुछ देखने की कोशिश कर रहा है: वह जीवन के सुख-दुख से परे कभी नहीं हो पाता। जीवन के तरह-तरह के दु:खों को उसे भोगना ही पड़ेगा।

जीवन के कष्ट मनुष्य को कष्टदायी न हों : इसके लिए उसे आन्तरिक चेतना की जागृति ध्यान (Meditation) द्वारा प्राप्त करनी पड़ती है। यही अध्यात्म है।

आन्तरिक चेतना की जागृति के दो रास्ते

प्रयासहीनता (ध्यान) का अभ्यास और आन्तरिक जगत के विषयों पर व्यक्तिगत वार्तालाप, जिसे समाज **सत्संग** कहता है अथवा पाँच इन्द्रियों के सारे क्षेत्रों में: एक ही समय में कोई भी व्यस्त नहीं रह सकता। मात्र जिस क्षेत्र में वह व्यस्त रहता है: उस क्षेत्र में चेतना की जागृति हो जाती है। लेकिन बाकी विषयों के क्षेत्र से संबंधित चेतनाओं की जागृति उसके अन्दर नहीं होती।

जो व्यक्ति कुछ वर्षों से आन्तरिक चेतना में व्यस्त हैं, वे भलीभाँति जानते हैं कि आन्तरिक चेतना के जागरण में व्यस्त व्यक्तियों को: कोई विशेष क्षेत्र निश्चित नहीं करना पड़ता। यह हमें बताता है: कि आन्तरिक चेतना की जागृति जीवन के सुख के अनन्त क्षेत्रों में से किसी भी क्षेत्र में प्रयोग की जा सकती है।

विशेष बात तो यह है कि हमारी आन्तरिक चेतना : कहां तक जागृत हो चुकी है। मात्र इस जागृति के आधार पर ही हम अपने जीवन के किस क्षेत्र का सुख कब प्राप्त करें: इसके लिए वह सदा स्वतंत्र है।

श्रीमद् भगवद् गीता (18.13 से 18.66) कहती है कि आन्तरिक चेतना की जागृति के दो रास्ते हैं: सांख्य और योग।

लेखक का कहना है कि प्रयासहीनता (ध्यान) का अभ्यास ही योग है। लेकिन अभ्यास द्वारा जागृति पैदा करने के साथ-साथ जीवन के अलग-अलग पहलुओं के सुख और दुःख पर वार्तालाप (सत्संग) भी मनुष्य की चेतना की जागृति में बहुत मदद करती है। इसी आधार पर भारत जैसे आध्यात्मिक देश में अलग-अलग समय के आध्यात्मिक पुरुष, समाज के उन व्यक्तियों के लिए, जो उनके सम्पर्क में नहीं आ सकते: जीवन के अलग-अलग पहलुओं के ज्ञान की पुस्तकों द्वारा समाज तक ले जाते रहे हैं।

ध्यान: क्या, क्यों, कैसे, कब, कहां और कितना हो ?

मन का भ्रमण, शरीर के अन्दर : ध्यान है। ध्यान:किया नहीं जाता। मात्र इन्द्रियजगत और बुद्धिजगत से मन के हटने से मन का भ्रमण : मन और बुद्धि के संसार से परे क्षेत्र में हो जाता है। अर्थात् ध्यान किया नहीं जाता: हो जाता है। ध्यान के लिए जब हम एकान्त ढूंढते हैं : तो कान के कर्मों (धर्म) से मन को छुटकारा मिल जाता है। अंधेरे में आँख बन्द करने से : आंखों के कर्मों से छुटकारा मिल जाता है। सुविधाजनक आसन में कुचालक (Bad Conduct of Electricity) पर बैठने से : गुरुत्वाकर्षण-शक्ति के प्रभाव से छुटकारा मिल जाता है। बैठ जाने से : बाकी सभी इन्द्रियों के कर्मों (Duties) के बन्धन से जीव मुक्त हो जाता है। एक बार मन में ईश्वर के किसी नाम को स्मरण करके मन को स्वतंत्र छोड़ने से : वो इन्द्रियों और बुद्धि दोनों के बन्धन से स्वतंत्र हो जाता है और आन्तरिक क्षेत्र में मन भ्रमण करने लगता है। यही “ ध्यान” (Meditation) है।

ध्यान उस समय करना चाहिये : जब शरीर में कम से कम थकावट हो। अतः प्रातःकाल के समय उठने के पश्चात्, आधे घण्टे के अन्तर्काल में, एकान्त और अंधेरे में लगभग आधे से एक घण्टे तक के समय के लिये बैठ जाना और ‘ होनी’ पर समर्पित हो जाना : जीवन को सुखी बनाने में मदद करेगा।

जीव के लिए इन्द्रिय जगत का जीवन सुखदायी है या दुःखदायी ?

मन कागज है। मन का भ्रमण कर्म है। कर्म दो प्रकार के हैं : शरीर के बाहर और शरीर के अन्दर। शरीर के बाहर का कर्म : “लेखनी” है। शरीर के अन्दर का कर्म, जिसे हम ध्यान कहते हैं : बाहर के कर्मों द्वारा मन पर लिखे हुये, को मिटाने वाला “रबड़” (Eraser) है, जिससे वो फिर कोरा बन सके। ऊपर बताए गये ध्यान के कर्मों द्वारा : मन पर अंकित दुःखदायी भाग मिट जाते हैं और सुखदायी भाग में बढ़ौत्तरी हो जाती हैं। ध्यान द्वारा जीव का आत्मज्ञान बढ़ता है और वह जीवन में सुख के क्षेत्र का ज्ञानी हो जाता है। ये प्रकाशन ‘जीवन क्या है ? के चार भाग’ इस शुभ कामना के साथ प्रस्तुत कर रहा हूं कि इन में छपे हुए लेख समाज के साधारण व्यक्तियों को भी आत्मवान बनाएं। जीवन सत्य है। जीवन के ज्ञान का सबसे बड़ा लक्ष्य यही है कि : समय बीतने के साथ-साथ हमारा जीवन अधिक से अधिक सुखी हो। □

‘सन्यास’ एवं ‘ध्यान योग’ : सम्बन्धित (सन्यासी गीता)

मैंने कहा सन्यास जो: वही ध्यान योग तू जान।
बिन सन्यास के ध्यान नहीं, यह साँच कर मान॥
कर्म इन्द्रिय विषयान से, होय प्रीत जब दूर।
सब संकल्पन को तजे: ध्यान योग रहे भरपूर॥

अपना आप ही मित्र है, जे मन इन्द्रिय जीत।
जिसको इन्द्रिय जीत ले, बैरी उसका चित्त॥
मन अपने को जीत कर, हृदय में रहे शान्त।
धरे ध्यान उस ईश का, देख जगह एकान्त॥
शुद्ध स्थान को देख ले, अच्छी प्रकार विचार।
कुशा मृगचर्म वस्त्र बिछा, आसन करे तैयार॥
इन्द्रियन को रोक कर, मन को जीते आद।
आसन तन मन शुद्ध कर, ध्यान योग के बाद॥
शिर काया अरु ग्रीव को, राखे एक समान।
इधर उधर दृष्टि न हो, नाक भाग पै आन॥
मन को ऐसे जीत कर, ऐसे योग को ध्याय।
शान्तमय ब्रह्म को मिले, कहें कृष्ण समझाय॥
अति जागरण अरु स्वप्न से, ध्यान न पूरा होय।
निराहार, बहु सेवन सों, ध्यान अधूरा होय॥
चित्त वृत्ति को रोक कर, हृदय मं टिकाय।
ज्योति का प्रकाश हो, भृकुटी ध्यान जमाय॥
इसी प्रकार ध्यान कर, पाप को देवे त्याग।
दर्शन पावे ब्रह्म का, हो उससे अनुराग॥
अर्जुन तब विनती करे, मन चंचल बलवान।
रोकना इसका कठिन है, अस्थिरः पवन समान॥
मित्रवर साँची कही, मन स्थिर नहिं होय।
वैराग्य, अभ्यास, त्याग से, चंचलता दे खोय॥
अति साधन सिद्धि मिले, पहले जन्म संयोग।
परा गति की प्राप्ति हो, यतन करे ध्यान योग॥
तपियों से योगी बड़ाः ध्यान योग तू जान।
कर्मी से योगी बड़ा, अर्जुन! निष्काम कर्म महान॥
योगियों में वही भला, श्रद्धावान जो होय।
प्रेम भक्ति में मगन होः मेरा प्यारा सोय॥

-प्रस्तुति : अनु जैन (भिवानी)

भीतर की यात्रा ही सार्थक

✍ पं० विजय शंकर मेहता

यह अत्यधिक बाहर रहने का युग है। सारी दौड़ बाहर की तरफ है। अपने भीतर मुड़ने को मनुष्य या तो समय की बर्बादी मानता है, या मूर्खता। यदि समझदारी आ जाए तो भीतर की यात्रा ही सार्थक है और बाहर की दौड़ भी व्यर्थ नहीं है। बाहर के कुछ तयशुदा काम हैं: नाम, दाम को पाना और बढ़ाते जाना। इसके लिए हालात से लड़ना और अपने हक, हित में बदलना: इसे पुरुषार्थ का नाम दिया गया है।

लेकिन जीवन में कुछ ऐसा अज्ञात भी होता है : जो नहीं बदल पाता। इसे ही भाग्य कहा गया है। चाहने पर जो न मिले और न चाहते भी मिल जाए : इन्हीं शब्दों में भाग्य की परिभाषा ढूंढी गई है। सारे बाहरी परिश्रम के बाद भी यह अज्ञात: अपना काम कर जाता है और आदमी फिर तनावग्रस्त, निराश होता है। चलिए, इसी कारण भीतर की यात्रा (ध्यान योग) का फायदा समझ लें :

भीतर जाते ही हमारा वह अज्ञात, परमात्मा की परमशक्ति से जुड़ जाता है। प्रकृति के हर निर्णय पर हम उसके हस्ताक्षर देखने लगते हैं। जीसस ने कहा है: 'मैं हूं ना', और यहीं से भीतर वह आश्वासन मिल जाता है (कि नाम-दाम कम हों या ज्यादा। खूब आबाद हो जाएं या बर्बाद), जब तक तू है: फिर क्या फिक्र। इसके बाद मनुष्य समझ जाता है: असली आनन्द भीतर है। ऐसे लोगों को स्वर्ग में रखो या नर्क में : वे मजा स्वर्ग का ही लेंगे। झोपड़ी में हों या महल में रहें: उनकी मस्ती कायम ही रहेगी। ऐसे लोग बाहर के हालात से भीतर प्रभावित नहीं होंगे और सुख-दुख की परिभाषा ही बदल देंगे।

हर कोई चाहता है कि उसे कर्म के परिणाम मिलें और वह भी लाभ की शक्त में। जो लोग कर्म और उसके परिणाम के प्रति बहुत आग्रहशील हैं : उन्हें अपने तन और मन की गति को संतुलित और नियंत्रित करना पड़ेगा। मन से ही तन प्रभावित होता है। जब मन किसी

विषय से आकर्षित होकर सक्रिय होता है : तो यह तन भी चलायमान हो जाता है। इसलिए सदैव मन को स्थित होना चाहिए। यदि तन और मन दोनों स्थित हैं: तो संयम-साधना (ध्यान अथवा Relax) का परिणाम-लाभ सुमेरू पर्वत के समान पाया जा सकता है। मन को साधने तथा स्थित होने के लिए तीन तरीके थोड़े आसान हैं:

- (1) पहला सत्संग किया जाए। इससे मन को शुभ समय मिलता है।
- (2) दूसरा गुरु कृपा हो जाए। गुरु प्रवचन की ताकत मन को नियंत्रित तथा स्थित होने में मददगार होती है और
- (3) तीसरा है, ध्यान योग-

पहिले यह मन काग था, करता जीवन घात।

अब तो मन हंसा भया, मोती चुनि-चुनि खात॥

पहले अज्ञान दशा में यह मन कौवे की भांति था। परंतु अब सत्संगति, ध्यान योग तथा सद्गुरु के ज्ञानोपदेश से मन हंस की भांति हो गया है। अतः विवेकी भाव से दुर्गुणों को छोड़कर: सद्गुण-ज्ञान रूपी मोतियों को ही चुनकर खाता है। इसलिए मन पर काम किया जाए। **मन का भोजन है:** ध्यान। जितना गहरा ध्यान होगा : उसे अपनी चेतना से जोड़ने का उतना ही मन नियंत्रित तथा स्थित होता जाएगा। □

रात्रि ध्यान आवश्यक क्यों ?

✍ श्री सुरेन्द्र कुमार, मो. : 09416671105

रात को सोने से पहले अगर सिर्फ बीस मिनट की जाग हो जाए तो सारी रात: मन की जागृति (गीता 2.69) स्वयंमेव बनी रहती है। नहीं तो पूरी रात बेहोशी में गुजरती है। इसीलिए रात को सोने से पहले बीस मिनट का ध्यान जरूरी है। भगवान तो एक शक्ति का नाम है : इसे हम ध्यान में बैठकर, गहराई में उतरने के बाद महसूस कर सकते हैं। प्रारब्ध कर्मों के कारण ही हमें सुख या दुःख मिलते हैं। ध्यान रूपी साधना के द्वारा हम प्रारब्ध कर्मों से तो मुक्त नहीं हो सकते। लेकिन ध्यान साधना के

लम्बे अन्तराल के बाद : महसूस करने की शक्ति कम होने से, प्रारब्ध कर्मों का प्रभाव लगभग खत्म हो जाता है। ध्यान का अभ्यास एकान्त में व अन्धेरे में ही करना चाहिए, ताकि हमारी इन्द्रियां बाहरी शोरगुल का आनन्द ना ले सकें। हम ध्यान की शुरूआत में ये सोच लेते हैं कि हमे अन्दर का रास्ता हाईवे (Highway) जैसा चौड़ा खाली मिले। विचार रूपी ट्रैफिक हमारे अन्दर ना हो। ध्यान रूपी गाड़ी चलाने में हमें आनन्द आए। ये सब ध्यान के लम्बे अभ्यास से विचार रूपी ट्रैफिक (Traffic) घटने के बाद ही मुमकिन होता है। पूरा दिन हमारे अन्दर जो विचार चल रहे हैं: अगर हमारी आंखें खुली हैं, तो वह चिन्ता कहलाती है। अगर हमने स्थूल नेत्रों को बन्द कर दिया तो वही चीजें चिन्तन में और ध्यान में तबदील हो जाती हैं। सिर्फ हमने अपने जीवन की बाहरी दिशा को आन्तरिकता में बदलना है। आन्तरिक उच्च चेतनाओं को जगाने की कला का नाम ही ध्यान है। आन्तरिक विराट समुद्र की गहराई में लहरों के शान्त करने की कला का नाम है: ध्यान ! आन्तरिक विषय-विकार रूपी भीष्म जंगलों की कटाई व सफाई का नाम है: ध्यान। □

मन की सूक्ष्म तरंगों में अब भी उनका आभास

✍ डॉ० त्रिभुवन भारद्वाज

डा० शम्भू नाथ जी ने स्वयं को अध्यात्म शिक्षक बताया: गुरु नहीं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश को गुरु श्रेणी में रखा और स्वयं को गुरु बन्धन से मुक्त रखा। सन् 1985 से लगातार हर महीने साधकों के कल्याणार्थ : इलहाबाद से हिसार, गुड़गांव, दिल्ली, लखनऊ और बरेली इत्यादि शहरों में नियमित आते थे। सारा दिन प्रश्नोत्तर के माध्यम से अनेक स्थानों पर अपने प्रवचनों द्वारा साधकों में धारावाहिक अमृत वर्षा करते थे। उनके आगमन की निश्चित तिथि नजदीक आते ही: अशान्त मन शान्त होने लगता था और आपस में सामन्जस्यता बनने लगती थी।

यह अनुभूति अनेक साधकों को रही। मन की सूक्ष्म तरंगों में अब भी उनका आभास है :-

कबीरा जब तुम आए जग में, जग हंसा तुम रोए।
ऐसी करनी कर चले: तुम हंसे जग रोए ॥

✱ ✱ ✱

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-14 : मन चाहा यदि कर सकें, हो मंगल परिणाम।

ध्यान यही संभव करे, लहै जीव विश्राम ॥

संसार में कौन ऐसा व्यक्ति होगा :जो मनमानी करने की छूट नहीं चाहता। परन्तु मनमानी करने में बाधा इसलिए पड़ती है, क्योंकि मनमानी करने का परिणाम सुखप्रद (मंगलमय) ही होगा : अनुभवी को देखते हुए, इस पर विश्वास नहीं होता। दुखी केवल वहीं है : जो मनचाहा नहीं कर सकता। यदि मनचाहा करने की ताकत हो : यानी मनमानी करने पर भी परिणाम मंगलमय हो, तो जीवन में दुःख की संभावना ही नहीं रहेगी। **ध्यान के अभ्यास का परिणाम मन को मनचाहा (स्वाभाविक क्रिया) करने की क्षमता प्रदान करता है। मनचाहा करने की यह ताकत उत्तेजित मन में नहीं, बल्कि बिल्कुल शान्त मन में निवास करती है।**

इस दोहे में कहा गया है कि जो अपने मन को ध्यान-योग की साधना से शान्त अवस्था में रखने योग्य हो जायेगा : वही मनचाहा करने और मंगलमय परिणाम प्राप्त करने में सक्षम हो जायेगा। ध्यान एक प्रयासहीन प्रक्रिया है और स्वाभाविक क्रिया भी प्रयासहीन ही होती है। अतः ऐसी साधना का जीवन : परम विश्राम का जीवन हो जायेगा। गोस्वामी जी ने श्री रामचरित मानस की रचना 'निज संदेह मोह भ्रम हरनी' के लिये की है और अन्त में उन्होंने सफलता भी प्राप्त की: जिसे उन्होंने मानस के अन्त में 'पायो परम विश्राम' कह कर पुष्टि भी कर दी है।

अष्टावक्र गीता (1.4) अनुसार :-

यदि देहं पृथक्कृत्य चिति विश्राम्य तिष्ठसि।

अधुनैव सुखी शान्तः बन्धु मुक्तो भविष्यसि ॥

गुरु अष्टावक्र जी कहते हैं कि हे जनक ! यदि तुम शरीर को पृथक् करके तथा चैतन्य आत्म विश्राम पूर्वक स्थित हो: तो तुम अभी ही सुखी, तथा बन्धन मुक्त हो जाओगे।

नोट :- 1. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर नज़दीक बस स्टैंड, हिसार में पारिवारिक सत्संग शाम को 3 बजे से 5 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

2. ध्यान सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना

(Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

-सुरेश कुमार गुप्ता

1618, अर्बन एस्टेट-II,

पुष्पा कम्पलैक्स के पीछे, हिसार-125005

PRINTED MATTER